

जयकृष्णप्रणीतम्

ध्रुवचरितम्

सम्पादिका

अपराजिता मिश्रा



राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

गङ्गानाथझापरिसरः

चन्द्रशेखर-आजादोद्यानम्

प्रयागः - 211002

Ganganatha Jha Campus Text Series No. 69

General Editor

Prof. Sarvanarayan Jha

Dhruvacaritam

by Jayakṛṣṇa

Edited by

Aparajita Mishra



Rashtriya Sanskrit Sansthan

Ganganatha Jha Campus

Chandrashekhar Azad Park

Allahabad - 211 002

2011

Published by : Principal
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Ganganatha Jha Campus
Chandrashekhar Azad Park
Allahabad - 211 002 (U.P.) India

First Edition : 2011

Price : Paper Back ₹ 30/-
Hard Bound ₹ 110/-

978-93-83135-96-7

Printed At : Academy Press
Daraganj, Allahabad

गङ्गानाथझापरिसरमूलग्रन्थमाला प्रसूनम् - 69

प्रधानसम्पादकः

प्रो. सर्वनारायण झा

जयकृष्णप्रणीतम्

ध्रुवचरितम्

सम्पादिका

अपराजिता मिश्रा

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

गङ्गानाथझापरिसरः

आजादोद्यानम् , इलाहाबादः 211002

2011

प्रकाशकः प्राचार्यः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझा-परिसरः,
इलाहाबादः -2

संस्करणः प्रथम

प्रकाशनवर्षम् - 2011

मूल्यम् : पत्रबन्धावरणम् ₹ 30/-
कठिनबन्धावरणम् ₹ 110/-

पृष्ठविन्यासकरः
ब्रह्मानन्दमिश्रः
सहयोगः
आशीषकुमार द्विवेदी

मुद्रणम्
एकेडमी प्रेस,
दारागंज, इलाहाबाद

प्राक्कथन

अलौकिक भक्ति के कारण संसार के भक्तों में भक्तप्रह्लाद और भक्त ध्रुव का स्थान प्रात: स्मरणीय कोटि में आता है। प्रह्लादजी के निष्काम भाव से की गयी भक्ति की महिमा का वर्णन असंभव है। प्रारम्भिक जीवन से ही प्रह्लादजी में निष्काम भाव था। भगवान् नृसिंह देव ने जब इन्हें वर मांगने को कहा था तो इन्होंने कहा था कि हे नाथ! क्या मैं लेनदेन करने वाला व्यापारी हूँ? मैं तो आपका सेवक हूँ। सेवक का धर्म मांगना नहीं है और स्वामी का धर्म भी कुछ देकर भक्तों को टालना नहीं होता है। फिर भी जब भगवान् ने नहीं माना और आग्रह करते ही रहे; तो भक्त प्रह्लाद ने कहा, कि हे प्रभो! मेरे पिता ने आपसे द्वेष करके आपकी भक्ति में बाधा पहुँचाने के उद्देश्य से मुझपर जो अत्याचार किए उस दुष्कर्म के पाप से वे अभी ही मुक्त हो जायँ ऐसा वर दीजिए। एत्वत्प्रसादात् प्रभो सद्यस्तेन मुच्येत मे पिता। (विष्णु० 1.20.24) क्या महानता है भक्त प्रह्लाद की। दूसरा वर उन्होंने मांगा कि हे प्रभो यदि देना ही चाहते हैं तो मुझे यह वर दें कि मुझे कभी कुछ मांगने की अभिलाषा ही न हो। भक्त प्रह्लाद का निष्काम भाव और दृढ़ता संसार का सबसे बड़ा आदर्श है।

परम भक्त ध्रुव में तो भक्त प्रह्लाद से भी बढ़कर निष्काम भाव, दृढ़ता और उदारता थी। उनका चरित अत्यन्त आदरणीय और अनुकरणीय है। उन्होंने तो एक कदम और आगे बढ़कर भगवान् से अपनी सौतेली माता के लिए वर माँगा कि मेरी माता सुरुचि ने यदि मेरा तिरस्कार न किया होता तो आपके दुर्लभ दर्शन का अलभ्य लाभ मुझे नहीं मिलता। मेरी माता ने मुझपर ऐसा करके बहुत बड़ा उपकार किया है। इस प्रकार दोष में गुण आरोपित कर सौतेली माँ के लिए मुक्ति का वरदान मांगना अपने आप में अद्भुत् चरित है। भक्त प्रह्लाद पिता हिरण्यकशिपु के द्वारा दिए गए घोर कष्टों को प्रसन्नचित्त होकर सहते रहे तो भक्त ध्रुव ने वन में अनेक कष्टों को सानन्द सहा। नियमों से नहीं हटे। अपने सिद्धान्त पर डटे रहे। भय या प्रलोभन का थोड़ा सा भी असर नहीं हुआ। बहुत सी बातों में एक जैसे होने पर भी भक्त ध्रुव का चरित परम आदर्श और वन्दनीय है इसीलिए विभिन्न पुराणों में थोड़े बहुत अन्तर के साथ इस आदर्श चरित का गुणगान किया गया है। परवर्ती अनेक कवियों ने ध्रुव चरित को केन्द्र मानकर काव्य करते हुए ईश्वर भक्ति की है। इसी परम्परा का परिपालन करते हुए भक्त कवि जयकृष्ण ने लगभग 17वीं शदी में 'ध्रुवचरितम्' नामक लघुकाव्य की रचना की। यह काव्य भी भगवद्भक्तों की जीवनयात्रा में एक पाथेय का कार्य करेगा। सामान्य सुधी भक्तजन भी इससे अवश्य लाभान्वित होंगे क्योंकि भक्त कवि जयकृष्ण ने बोधगम्य सरल भाषा में ध्रुवचरित का वर्णन किया है। इस तरह के काव्य के सम्पादन से भक्त कवि जयकृष्ण, उनकी कृति ध्रुवचरितम् और भगवत् कथा का प्रचार-प्रसार होगा। यह भी एक प्रकार की भक्ति ही है। इसलिए इस ग्रन्थरत्न की सम्पादिका विदुषी डा. अपराजिता मिश्रा सहायक आचार्या, साहित्य, गङ्गानाथ झा परिसर भगवत् कृपा की पात्रा हैं और मैं भी उन्हें साधुवाद और वर्धापन करता हूँ। भक्तिकाव्य की शृङ्खला में इस कृति का विद्वानों में आदर हो यही मेरी शुभकामना है।

सर्वनारायण झा

विषय-सूची

भूमिका

मानव की मूल संवेदना एवं अनुभूति, जो काव्य में अभिव्यक्त होती है, अखण्ड एवं अविभाज्य होती है। काव्य की अन्तर्वर्तिनी धारा दिक्काल का अतिक्रमण करती हुई चिरंतनता, शाश्वतता एवं सातत्य की परिचायिका होती है। अन्तर केवल अभिव्यञ्जना एवं अभिव्यक्ति के स्वरूपों में विभिन्न दृष्टिकाणों से उपलब्ध होता है। जीवन के परिवर्तित स्वरूपों, जीवनगत मूल्यों के अन्तराल, रचनाकार की प्रवृत्ति एवं प्रकृति, काव्य-परम्परा के प्रयोग वैविध्य तथा बंधगत वैभिन्य के कारण ही अनेक साहित्य रूपों एवं काव्य-विधाओं का जन्म होता है। ये विविध साहित्य रूप एवं विधाएँ अपनी शिल्पगत विशेषताओं तथा जीवन-दृष्टियों को उपस्थित करने की विविध शैलियों के कारण ही अपना अस्तित्व पूर्ववत् यत् किञ्चित् परिवर्तन के साथ अक्षुण्ण रखे हुए हैं।[1] संस्कृत-साहित्य में भी क्रमशः अनेकानेक काव्य-रूपों के उद्भव, विकास एवं परिवर्तन का क्रम सतत परिलक्षित होता है। भारत के लोक-जीवन एवं सांस्कृतिक चेतना को प्रतिबिम्बित करने वाला 'चरित-काव्य' ऐसा ही काव्य-रूप है। संस्कृत-साहित्य से उत्पन्न यह काव्य-विधा विविध कालों एवं भाषाओं में क्रमशः विकसित, परिवर्तित एवं परिवर्धित होती हुई मध्य युग में (विशेषतः हिन्दी काव्य में) सर्वाधिक सशक्त काव्य-विधा के रूप में प्रचलित हुई। सज्जनों और महापुरूषों के चरित्र को काव्य का विषय बनाने की प्रवृत्ति भारतीय साहित्य में वैदिक काल के पश्चात् से ही दृष्टिगोचर होती है, इसके मूल में लोकसंग्रह की भावना निहित थी। चरित-काव्यों के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से यही चरित्र उपजीव्य सिद्ध हुए। भारतीय दर्शन और संस्कृति को प्रतिबिम्बित करने वाले इस काव्य-रूप का उद्देश्य लोकादर्श और लोकानुरञ्जन था। भारतीय दर्शन और लोक-संस्कृति की अनुगूँज इन चरित-काव्यों में सुनाई पड़ती है। संस्कृत-साहित्य में चरित-काव्य स्वतन्त्र विधा के रूप में कभी स्थान नहीं पा सके। संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ में चरितकाव्यों के काव्यगत वैशिष्ट्य और स्वरूप को परिभाषित नहीं किया गया। इन्हें अन्य काव्य-रूपों विशेषतः महाकाव्य और खण्डकाव्य के अन्तर्गत ही रखा गया है। संस्कृत के पौराणिक एवं ऐतिहासिक शैली के प्रबन्ध-काव्यों तथा प्राकृत एवं अपभ्रंश के लोकपरक काव्यों के मध्य इसने अपना अस्तित्व ग्रहण किया। चरित-काव्यों में आकर्षक रूप से कथ्य के प्रस्तुतीकरण हेतु अभिव्यञ्जना की अलङ्कृत, वर्णनात्मक, उपदेशात्मक, प्रश्नोत्तर तथा कथात्मक शैली का आश्रय लिया जाता है। रामायण और महाभारत ने कथ्य और शिल्प की दृष्टि से चरित-काव्यों को व्यापक

रूप से प्रभावित किया। उपजीव्यता की दृष्टि से चरित काव्यों में पौराणिकता की सृष्टि हुई, इनका प्रारम्भिक स्वरूप तो धर्म प्रधान ही रहा तथा उनमें कर्म, ज्ञान, उपासना की विविध स्थितियाँ भी स्वीकृत होती रहीं। चरित-काव्य मूलतः कथा-प्रधान काव्य हैं, अस्तु इन ग्रन्थों में कथाओं को सङ्गृहीत कर उन्हें अपने सिद्धान्तों के अनुरूप परिवेश देने का यत्न इनके अन्तर्गत किया गया। पुराणों की शैलियों का प्रभाव चरित-काव्यों पर देखा जा सकता है।[2] राजवंशों और प्रसिद्ध राजचरितों का वर्णन पुराणों का प्रमुख विषय रहा है। इन राजाओं के चरित्रों के माध्यम से आदर्शों की स्थापना की गई है। भागवतकार कहते हैं कि यहाँ उन्हीं राजाओं के चरित्र का वर्णन है जो स्वयं आदर्श चरित्र, यशस्वी तथा सदाचार सम्पन्न थे।[3] विशेष ज्ञान और वैराग्य का वर्णन ही इन पुराणों का उद्देश्य था।

संस्कृत महाकाव्यों की विशिष्ट शैली का प्रभाव भी चरित काव्यों पर पड़ा। शैलीगत तथा विषयगत भेद की दृष्टि से यह महाकाव्य पौराणिक तथा चरित सम्बन्धी महाकाव्य में विभाजित किए जा सकते हैं। पौराणिक महाकाव्यों की विषयवस्तु महाभारत तथा रामायण से ली गई है परन्तु चरित-महाकाव्यों की रचना संस्कृत के ह्रासोन्मुख काल में हुई इन्हीं चरित-महाकाव्यों से ही प्रत्यक्षतः चरित काव्यों का जन्म हुआ। राजाश्रित कवियों द्वारा अपने आश्रयदाता की प्रशंसा ही इन महाकाव्यों का विषय था। विक्रम की ग्यारहवीं शती से लेकर बहुत बाद तक इस तरह के तथाकथित ऐतिहासिक चरित्र काव्यों की बाढ़ संस्कृत साहित्य में देखी जा सकती है, जिसका प्रभाव हिन्दी के आदिकालीन चरित-काव्यों पर भी पड़ा।[4] संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक, रोमाञ्चक धर्माश्रित एवं पौराणिक चार प्रकार की शैलियों के चरित-काव्य लिखे गये हैं।

भारतीय साहित्य में छठी शताब्दी के पूर्व ऐतिहासिक चरित-काव्य की प्रवृत्ति अनुपलब्ध है। ऐतिहासिक चरित-काव्यों में तथ्यात्मकता की अपेक्षा कल्पना का ही प्राधान्य है। राजाओं द्वारा विजयोपरान्त उत्कीर्ण कराई गई शिला-प्रशस्तियों को इनका आरम्भिक रूप माना जा सकता है। बाणभट्ट कृत 'हर्षचरित' (सातवीं शती) तथा वाक्पतिराय का 'गौणवाहो' चरित काव्य की दृष्टि से प्रारम्भिक रचनाएँ कहीं जा सकती हैं। विल्हण का 'विक्रमाङ्कदेवचरित' (ग्यारहवीं शती-उत्तरार्द्ध) इन चरित-महाकाव्यों के विकसित रूप का परिचायक है। तो पद्मगुप्त का 'नवसाहसाङ्कचरित' (ग्यारहवीं शती- पूर्वार्द्ध) भी इसी परम्परा का पुष्ट प्रमाण उपस्थित करने वाला ऐतिहासिक महाकाव्य है। श्रीहर्ष कृत 'नैषधीयचरित' (बारहवीं शताब्दी) ऐतिहासिक चरितकाव्यों की दृष्टि से सर्वप्रमुख है। इसमें काव्य-शिल्प का श्रेष्ठतम प्रदर्शन है। छठीं शताब्दी के पश्चात् संस्कृत के परवर्ती साहित्य में ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम से चरित-काव्य लिखने की परम्परा में शताधिक ग्रन्थ के प्रणयन के प्रमाण मिलते हैं। नवीं तथा दसवीं शताब्दी में ऐसी रचनाओं की लोकप्रियता दिखलाई पड़ती है। इन्हीं चरित काव्यों की रचना विजय, विलास, राम आदि नामों से बाद में

लिए गए। इसमें हेमचन्द्र कृत 'कुमारपालचरित', सोमेश्वर की 'कीर्तिकौमुदी', बालचन्दसूरि का 'वसन्त-विलास' उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत-साहित्य में रोमाञ्चक चरित-काव्य भी प्राप्त होते हैं। यद्यपि व्यापक प्रवृत्ति के रूप में इस प्रकार के चरित-काव्यों की परम्परा संस्कृत में नहीं मिलती तथापि वैदिक साहित्य के उर्वशी- पुरुरवा (ऋग्वेद 10/95), यम-यमी (10/10) श्यावाश्य (5/61) के आख्यानों से रोमाञ्चक चरित-काव्यों की परम्परा आरम्भ होती है। रामायण, महाभारत, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कादम्बरी, हर्षचरित आदि ग्रन्थों का प्रभाव भी इसके विकास पर पड़ा। वैदिक-साहित्य और वीर महाकाव्यों में रहस्य-चमत्कार और रोमाञ्चक तत्त्व प्रधान रूप में प्राप्त होते हैं। इनमें रोमाञ्चक आख्यान के स्रोत अन्वेषित किये जा सकते हैं। इन काव्यों में उदात्तता और यथार्थता के स्थान पर कल्पनातिशयता रहस्यात्मकता का आधिक्य होता है। रोमाञ्चक चरित-काव्य के विषयगत वैशिष्ट्य में कथा के विकास के स्थान पर घटनाओं के विवरणात्मक और अव्यवस्थित विस्तार की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। डॉ. शम्भूनाथ सिंह के अनुसार "संस्कृत में रोमाञ्चक महाकाव्यों का प्रारम्भ प्रधानतया जैनों के पौराणिक काव्य-ग्रन्थों और गुणाढ्य की वृहत्कथा के आधार पर लिखे गए ग्रन्थों से मानना चाहिए। यद्यपि वे महाकाव्य नहीं, बल्कि पुराण और कथा-काव्य माने जाते हैं, किन्तु परवर्ती रोमाञ्चक काव्यों पर उसका प्रभाव बहुत अधिक है। आठवीं शताब्दी में जिनसेन ने 'आदि-पुराण' और उनके शिष्य गुणभद्र ने 'उत्तर-पुराण' तथा 'जिनदत्त-चरित' की रचना की। आठवीं-नवीं शताब्दी में बुद्ध ने 'वृहत्कथाश्लोक-संग्रह' और गौडाभिनन्द ने 'कादम्बरी-कथासार' पद्यबद्ध कथा-ग्रन्थों की रचना की। फिर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में एक ओर तो काश्मीर में क्षेमेन्द्र ने 'वृहत्कथामञ्जरी' और सोमदेव ने 'कथासरितसागर' नाम से गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' को काव्यात्मक रूप दिया, दूसरी और गुजरात में हेमचन्द्र ने 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित' नाम से जैनों के प्राकृतबद्ध पुराण कथाओं को संस्कृत में श्लोकबद्ध किया।"[5] 'कथासरितसागर' से प्रारम्भ रोमाञ्चक चरित-काव्यों की परम्परा का प्रवाह जैन कवियों द्वारा सोलहवीं शताब्दी तक बना रहा।

वस्तुतः संस्कृत में चरित-काव्य की परम्परा को पुष्पित-पल्लवित करने का श्रेय जैन कवियों को है। शैली तथा कथ्य की दृष्टि से जैन कवियों द्वारा रचित धर्माश्रित चरित काव्य विशिष्ट हैं। शिल्प और भाषा की दृष्टि से तो यह अन्य चरित काव्यों से पृथक् नहीं हैं परन्तु आधार, उद्देश्य, मान्यताओं और वैचारिक दृष्टि से इनका पार्थक्य है। इन चरित काव्यों के नायक जैन-धर्म के उपदेष्टा, तीर्थंकर, पुण्य-पुरुष, वणिक आदि होते थे। जैन कवियों ने आदि पुराण, हरिवंश-पुराण तथा उत्तरपुराण से इन चरित-काव्यों के लिए सामग्रियों का चयन भी किया किन्तु इन सामग्रियों को अपने धर्म के व्यापक प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अपने सिद्धान्तों और भावनाओं के अनुकूल बना लिया। जैन धर्माश्रित संस्कृत के इन महाकाव्यों में अनेक जन्मों की कथा के द्वारा किसी

व्यक्तित्व के उत्कर्ष और सम्पूर्णता का प्रदर्शन रहता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार इन चरित "काव्य ग्रन्थों के आरम्भिक कथानक में काम और अर्थ का भरपूर रोचक चित्रण रहता है तथा श्रोताओं का सहज मनोरञ्जन होता है। परन्तु कथानक जैसे-जैसे आगे गतिशील होता जाता है, मनोरञ्जन की गति धीमी पड़ती जाती है और कथानक धर्मकथा का व्यापक रूप ग्रहण करने लगता है। इन काव्यों की परिणति शान्त रस में होती है।[6] संस्कृत में निबद्ध जैन चरित महाकाव्यों में सिंहनन्दी कृत 'वराठचरित', वीरनन्दी रचित 'चन्द्रप्रभचरित' (1025 ई.), वादिराज कृत 'पार्श्वनाथचरित' (1042 ई.), महासेन विरचित 'प्रद्युम्नचरित' (1990 ई.), विनयचन्द्र सूरि कृत 'मल्लिनाथचरित' (तेरहवीं शती का उत्तरार्द्ध), 'जम्बूस्वामीचरित' रचना कविराजमल्ल (1575 ई.) आदि उल्लेखनीय हैं।

पौराणिक शैली के चरित-काव्यों की रचना की प्रवृत्ति संस्कृत-साहित्य में दसवीं शताब्दी के पश्चात् दिखाई पड़ती है। यह चरित-काव्य विशेषतः महाकाव्य शैली में लिखे गए। क्षेमेन्द्र कृत 'रामायण मञ्जरी', 'भारत मञ्जरी' तथा 'दशावतार-चरित' ग्यारहवीं शताब्दी में रचित चरित महाकाव्य हैं। रामायण, महाभारत और पुराणों पर आधारित दश अवतारों की कथा को इनमें रोचक तथा सरल शैली में प्रस्तुत किया गया है। हेमचन्द्र ने बारहवीं शताब्दी में 'मिषाठि-शलाका-पुरुष-चरित' ग्रन्थ की रचना की। वस्तुतः यह पौराणिक शैली का जैन चरित महाकाव्य कहा जा सकता है। वस्तुतः चरित-काव्य पुराण, कथा, आख्यायिका और शास्त्रीय महाकाव्यों की शैलियों की मिश्रित प्रवृत्ति की देन हैं।

चरित-काव्य की उत्पत्ति के मूल स्तोत्र पर विचार करते हुए डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है- संस्कृत के लक्षणकारों ने बहुत से अभिजात काव्य-रूपों का अध्ययन किया, किन्तु बहुत से ऐसे काव्य-रूप, जो प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में लोक-प्रचलित काव्यों से लिये गए, संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में विवेचित नहीं हो सके। इन रूपों के उद्गम-स्रोत, इनका ऐतिहासिक विकास तथा इनकी शैलीगत विशेषताओं का अध्ययन सांस्कृतिक विचारधारा के अध्ययन के लिए आवश्यक है। चरित-काव्य मध्यकालीन साहित्य का सबसे प्रसिद्ध तथा साथ ही साथ सर्वाधिक गुंफित और उलझा हुआ काव्य-रूप है। संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा को अग्रसारित करने वाला यह काव्य रूप न जाने कितने प्रकार के देशी-विदेशी काव्य-रूपों से प्रभावित हुआ है। चरित-काव्य लोकचित्रोद्भूत नाना प्रकार की निजन्धरी कथाओं, रोमाञ्चक तथा काल्पनिक घटनाओं के ऐन्द्रजालिक वृत्तान्तों से इतना रंगा हुआ है कि इसमें ऐतिह्य का पता लगाना दुष्कर कार्य है। मध्यकाल में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा नवोदित देशी भाषाओं में चरित नाम के सैकड़ों काव्य लिखे गए।" वस्तुतः इस काल-खण्ड में कोई भी पद्यबद्ध इतिवृत्तात्मक काव्य चरित-काव्य परिधि में स्वीकृत किया जा सकता था। चरित-काव्यों की परम्परा

में प्रबन्धात्मक महाकाव्य-स्वरूप की बहुलता है परन्तु मध्यकाल में ही अल्प-कलेवर (खण्डकाव्यात्मक) चरित-काव्यों की रचना की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। वस्तुतः चरित-काव्य का वर्गीकरण किसी एक साहित्य-रूप या बंध के भीतर नहीं किया जा सकता है। महाकाव्यों के स्वरूप की व्यापकता और महत्ता को देखकर चरित-काव्य लेखकों ने इस काव्य-रूप को व्यापक रूप में स्वीकार किया। इस प्रबन्ध रूप की स्वीकारोक्ति की पृष्ठभूमि में इस रूप की बंध-प्रणाली का वैशिष्ट्य ही कारण रहा। जीवन के सर्वाङ्ग विवेचन का अवसर होने के कारण कथा-विस्तार की सम्भावना होने के कारण प्रबन्धात्मक चरित-काव्यों के रचना की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। परन्तु ग्यारहवीं से 17 वीं शताब्दी के मध्य शास्त्रीय महाकाव्य के स्वरूप में ह्रास के पश्चात् चरित-काव्यों के स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया और पौराणिक, ऐतिहासिक तथा रोमाञ्चक शैली के चरितकाव्यों के साथ ही लघुकाय चरित-काव्य भी रचे गए।

जयकृष्ण विरचित 'ध्रुवचरितम्' इन्हीं स्फुट चरित-काव्यों की परम्परा की कड़ी के रूप में उपस्थित होता है। इसमें पुराणोक्त भक्त-श्रेष्ठ ध्रुव की कथा को चरित काव्यात्मक शैली में उपस्थित किया गया है। ग्रन्थ का कलेवर लघुकाव्य है। विविध छन्दों में 94 श्लोकों में ध्रुव की सम्पूर्ण कथा को सरल और सहज भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

ध्रुव कथा का आरम्भ और विकास - भक्त के रूप में ध्रुव का जो आख्यान जनमानस में प्रचलित है वह पुराणों में उपलब्ध होता है। पुराणों से पूर्व इस कथा का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। वेद में ध्रुव शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। ऋग्वेद में 'ध्रुवच्युतः',[7] 'ध्रुवपद',[8] 'ध्रुवसद्'[9] तथा 'ध्रुवादिक्'[10] इत्यादि पदों का प्रयोग प्राप्त होता है। इनका अर्थ अविनाशी अन्तरिक्ष, परमात्मा का आश्रय (ध्रुवपदे तस्थतु जागरुके), मेघ या वायु का स्थिर स्थान-अन्तरिक्ष, ध्रुवराजधर्म में स्थित तथा ध्रुव दिशा बताया गया है।

ऋग्वेद के पश्चात् सूत्र साहित्य में[11] ध्रुव तारे का द्योतक है। इसका उस विवाह-संस्कार के सन्दर्भ में उल्लेख है जिसमें वधू को स्थायित्व के प्रतीक रूप में ध्रुवतारा दिखाया जाता था।[12] डॉ. सुनील कुमार उपाध्याय द्वारा किए गए मौरिस ब्लूमफिल्ड के 'वैदिक- पदानुक्रम-कोश' के देवनागरी संस्करण में समस्त वैदिक संहिता जिसमें वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, गृह्यसूत्र, और श्रौत सूत्र सम्मिलित हैं, इनमें 10 स्थलों पर ध्रुव शब्द का प्रयोग दिखाया गया है[13] परन्तु इनमें से कहीं भी ध्रुव शब्द भक्त ध्रुव के सम्बन्ध में प्रयुक्त नहीं हुआ है। इससे स्पष्ट है कि पुराणों से पूर्व ध्रुव का अचल नक्षत्र के रूप में ही मुख्यतः उल्लेख प्राप्त होता है। ब्रह्म, विष्णु, वायु, मत्स्य भागवत, हरिवंश, पद्म, नारदीय और अग्नि पुराणों में ध्रुव से सम्बन्धित आख्यान प्राप्त होता है। पुराणों की रचना की पूर्वावधि चतुर्थ-तृतीय शताब्दी ई.पू. तथा अपर अवधि चौदहवीं शताब्दी प्रस्तावित की जा सकती है।[14] ध्रुव की कथा ने इन्हीं पुराणों में स्वरूप लिया। ध्रुव एक

दीर्घजीवी और युगप्रवर्तक महापुरुष थे, हरिवंशपुराणानुसार ध्रुव ने तीन सहस्रवर्षपर्यन्त तप किया-

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत।

तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन् सुमहद् यशः।।[15]

ध्रुव ने निश्चय ही दीर्घकाल तक राज्य किया होगा, इसकी अतिमात्रवृद्धि महिमा और यश के गीत असुर गुरु शुक्राचार्य ने गाये थे-

तस्यातिमात्रमृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य च।

देवासुराणामाचार्यः श्लोकमत्युशना जगौ।।[16]

परन्तु ध्रुव का भक्तिचरित प्रमाणिक पुराणपाठों से आकाश-कुसुम और काल्पनिक वस्तु ही सिद्ध होता है।[17]

प्राचीनता की दृष्टि से ब्रह्म-पुराण प्रथम पुराण माना जाता है। सर्वप्रथम इसी पुराण में ध्रुव की जो कथा मिलती है उसमें वर्णित है कि 'आपव' नामक प्रजापति ने प्रजा की रचना कर अयोनिज कन्या शतरूपा को अपनी पत्नी बनाया। 'आपव' के धर्म से ही शतरूपा उत्पन्न हुई थी। उसने दस हजार वर्षों तक अत्यन्त उग्र तपस्या करके स्वायम्भुव मनु को पतिरूप में पाया। इनका वीर नामक पुत्र हुआ। वीर की स्त्री काम्या से प्रियव्रत और उत्तानपाद उत्पन्न हुए। काम्या के चार पुत्र हुए- समाट्, कुक्षि, विराट और प्रभु। पुत्र उत्तानपाद से सुनृता ने चार पुत्रों को प्रसव किया ध्रुव, कीर्तिमान, आयुष्मान् और वसु। ध्रुव ने महान् यश की इच्छा से तीन हजार देव वर्ष पर्यन्त तपस्या की। ब्रह्मा ने सन्तुष्ट होकर सप्तर्षियों के आगे उसे अपने समान अचल स्थान दिया। ध्रुव के अभिमान, ऐश्वर्य और माहात्म्य को देखकर शुक्राचार्य उसकी प्रशंसा करने लगे। अहो! ध्रुव की तपस्या-शक्ति आश्चर्य है। इसका श्रुत (शास्त्र-ज्ञान) आश्चर्य है।

ध्रुवञ्च कीर्तिं मन्तञ्च आयुष्मन्तं वसुं तथा

उत्तानपादोऽजनयत् सुनृतायां प्रजापतिः

ध्रुवो वर्ष सहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भो द्विजाः।

तपस्तेपे महाभागः प्रार्थयन् सुमहद्यशः।

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसमं प्रभुः।

अचलञ्चैव पुरतः सप्तर्षिणां प्रजापतिः।[18]

'ब्रह्मपुराण' में ही चौबीसवें अध्याय में ध्रुव के नक्षत्र वैज्ञानिक स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है। यहाँ वर्णित है कि तारों से व्याप्त तथा शिशुमार तारे की आकृति जैसे भगवान् हरि के दिव्य रूप

के पुच्छ पर ध्रुव स्थित है। स्वयं घूमता हुआ वह ध्रुव सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों को भी घुमाता है। घूमते हुए ध्रुव के पीछे नक्षत्र समूह चक्र की तरह घूमता है। सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र, ग्रह ये सब वायु समूह रूपी ध्रुव में बंधे हुए हैं। आकाश में शिशुमार की आकृति की तरह जो ज्योतिषों का रूप कहा गया है, उसका आधार स्वयं परमधाम नारायण है, ध्रुव उस प्रजापति की उपासना कर शिशुमार की पूँछ पर व्यवस्थित हुआ। शिशुमार का आधार सर्वाध्यक्ष जनार्दन हैं। ध्रुव का आधार शिशुमार है और ध्रुव में सूर्य अवस्थित है।[19]

मत्स्य, ब्रह्म और विष्णु पुराण में उत्तानपाद की एक ही पत्नी सुनीति बताई गई है। इनके अनुसार उसके चार पुत्र थे वसु, आयुष्मान, कीर्तिमान, ध्रुव। भागवत पुराण, पद्म पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु पुराण और नारदीय पुराण में ध्रुव की कथा का स्वरूप लगभग समान है। ध्रुव के भक्तिचरित को सम्भवतः वैष्णव पुराणों में जोड़ा गया माना जा सकता है।[20]

विष्णु पुराण के ग्यारहवें और बारहवें अध्याय में ध्रुवोपाख्यान वर्णित है। प्रथम अध्याय में 56 श्लोक तथा द्वितीय अध्याय में 102 श्लोक हैं। मत्स्य, ब्रह्म और वायु पुराण के अनुसार उत्तानपाद की एक ही पत्नी थी जिसका नाम सुनीता था। इन पुराणों के अनुसार उसके चार पुत्र थे- अपासपति (वसु) आयुष्मन्त, कीर्तिमन्त और ध्रुव।[21]

ध्रुव कथा से सम्बद्ध उपलब्ध साहित्य - विभिन्न पुराणों में वर्णित ध्रुव से सम्बन्धित इन्हीं कथाओं को आधार बनाकर पुराण रचना काल के पश्चात् भी संस्कृत साहित्य में ध्रुव कथा को विभिन्न विधाओं के माध्यम से जीवन्त बनाए रखा गया। परवर्ती संस्कृत-साहित्य में 'ध्रुवचरित' नाम से अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। 'न्यू कैटेलॉगस कैटेलागरम' (सूची ग्रन्थ) वाल्यूम- 9 में पृष्ठ- 307 पर विभिन्न लेखकों द्वारा रचित 'ध्रुवचरित' नामक ग्रन्थों का उल्लेख है[22]-

(1) ध्रुवचरित - जीवगोस्वामी कृत, रुपगोस्वामी कृत 'भक्तिरसामृतसिन्धु' की जीवगोस्वामी कृत टीका, IO. 2503.

(2) ध्रुवचरित - Kavya. Killimangalattu Mana. 125 B, Trippunittura II 99, 274 (Both Prabandha) IV. 17.

(3) ध्रुवचरित - Kavya[23] (प्रारम्भ प्रणम्य बैकुण्ठपदारबिन्दं) MT. 5293.

(4) ध्रुवचरित - by Kamarajadiksita mentioned in his kavyendu prakasa, BORI, D. XII, 142.

(5) ध्रुवचरित - Campu, ascribed to Melputtur Narayana bhatta. Trav. Uni. 154 F (inc).

(6) ध्रुवचरित - Sangitakavya by Ramaswami Trav. Uni. 848 OC.

(7) ध्रुवचरित - BORI. 759 of 1895-1902.

न्यू कैटेलॉगस कैटेलॉगरम' में प्राप्त इन ध्रुवचरित संज्ञक ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से कतिपय और लेखकों के एतत्सज्ञंक ग्रन्थों का उल्लेख भी मुझे प्राप्त हुआ है। महाराजा जयपुर के संग्रहालय के पाण्डुलिपि कैटेलॉग में 19 वीं शताब्दी में जान गोपाल (Jana Gopala) कृत 224 पद्यों से युक्त (अपूर्ण) ध्रुवचरित का उल्लेख है।[24] जगन्नाथ पाठक द्वारा सम्पादित आधुनिक 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ में कोटिक्कोट मानविक्रम एट्टन तम्बुरान (1845 ई.) नामक लेखक के 'ध्रुवचरितम्' का उल्लेख मिलता है[25] एवं 1963 में प्रकाशित आचार्य छोटे लाल त्रिपाठी कृत ग्यारह सर्गात्मक 'ध्रुवचरित्रम्' (तपोवैभवम्) नामक ग्रन्थ भी प्राप्त होता है। संस्कृत वाङ्मय-कोश में दो और 'ध्रुवचरितम्' नामक ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है। उनमें एक म.म. गणपति शास्त्री कृत ध्रुवचरितम् एवं दूसरा जयकान्त कृत 'ध्रुवचरितम्' है।[26] निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पुराण साहित्य में आकार लेने वाला भक्त ध्रुव का आख्यान परवर्ती काव्यकारों के लिए उपजीव्य सिद्ध हुआ।

सम्पादित–मातृका-विवरण - उपरोक्त ग्रन्थों में अन्तिम जिसका उल्लेख श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने 'संस्कृत-वाङ्मय-कोश' में किया है और जिसका लेखक वह 'जयकान्त' नामक व्यक्ति को बताते है वह वस्तुतः 'जयकृष्ण' है। यह लघुकाय काव्य ग्रन्थ हस्तलेख के रूप में गङ्गानाथ झा परिसर में स्थित हस्तलेख संग्रहालय में संरक्षित है।

देवनागरी लिपिबद्ध इस हस्तलेख में 11 फोलियों (22 पृष्ठ) और प्रत्येक पृष्ठ में 12 पंक्तियाँ हैं। इसमें 93 श्लोकों में ध्रुव के भक्ति-चरित को निबद्ध किया गया है। हस्तलेख संख्या 33356 है। इस हस्तलेख की एक अन्य प्रति एशियाटिक सोसाइटी ऑफ कलकत्ता में है ऐसा राजा राजेन्द्रलाल मिश्रा द्वारा अपने हस्तलेख संग्रह ग्रन्थ 'Notices of Sanskrit Manuscripts-Vol.- II' में उल्लिखित है।[27]

जयकृष्ण विरचित इस चरित-काव्य में लेखक के समय का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। परन्तु हस्तलेख में प्रयुक्त लिपि के आधार पर इसका रचना काल 17 वीं शताब्दी के लगभग अनुमानित किया जा सकता है। हस्तलेख में लेखक के नाम के अतिरिक्त अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं होती। जयकृष्ण नामक अनेक लेखक हुए उनमें ध्रुवचरित के जयकृष्ण कौन है? इस अनुमान के लिए कोई प्रमाण बहुत प्रयास और अन्वेषण के बाद भी ज्ञात नहीं हो सका।

लेखक की अन्य कृतियाँ - जयकृष्ण के द्वारा रचित कुछ और ग्रन्थ भी प्राप्त होते है[28]-

(1) प्रह्लादचरित

(2) गोवर्धनधृतकृष्णचरित

(3) अजामिलोपाख्यान

(4) कृष्णस्तोत्र

(5) वामनचित्रचरित

इस प्रकार ध्रुवचरित के लेखक जयकृष्ण द्वारा लिखित यह पाँच ग्रन्थ और मिलते हैं। 'न्यू कैटेलागस कैटेलागरम' के अतिरिक्त इन रचनाओं के 'ध्रुवचरित' के लेखक जयकृष्ण द्वारा प्रणीत होने का उल्लेख राजेन्द्र मिश्रा और हरप्रसाद शास्त्री द्वारा पूर्व उल्लिखित हस्तलेख संग्रह में भी प्राप्त होता है।[29] इनमें 'कृष्णस्तोत्र' स्वतन्त्र रचना न होकर 'प्रह्लादचरित्रामृतप्रकरणं' (प्रह्लादचरित) का अंश है।[30] इस प्रकार ध्रुवचरित को लेकर जयकृष्ण रचित पाँच ग्रन्थ अब तक हस्तलेख के रूप में प्राप्त होते है ये सभी ग्रन्थ अपने शीर्षक से चरित-काव्य शैली में ही विरचित प्रतीत होते हैं। इनमें से किसी भी ग्रन्थ के प्रकाशित होने की सूचना नहीं प्राप्त हुई है।

ग्रन्थकार-परिचय - यह जयकृष्ण कौन है? और इनका काल क्या है? इस सम्वन्ध में कोई भी सूचना उपरोक्त ग्रन्थों से प्राप्त नहीं होती। जयकृष्ण नाम के अनेक लेखकों का उल्लेख मिलता है। परन्तु उनमें से किसी से इनका साम्य करने के लिए किसी अन्तः अथवा बहिर्साक्ष्य के अभाव में इनके जीवन, काल आदि के विषय में कुछ अनुमान ही किया जा सकता है। 'न्यू कैटेलॉगरस कैटेलॉगम' में इनके पिता का नाम बालकृष्ण मिलता है तथा इन्हें परिचारक कुलोत्पन्न कहा गया है।[31] जयकृष्ण अपनी सभी रचनाओं के अन्त में स्वयं को परिचारक कुलोत्पन्न कहते है।[32] 'द इनसाइक्लोपीडिया इन्डिका' में परिचारक शब्द का तीन अर्थ बताया गया है- (1) सेवक भृत्य, नौकर, दासेय, चेटक आदि (2) रोगादि के समय जो सेवा शुश्रुषा करता है (Nurse)। (3) देवमन्दिर आदि का कार्य प्रबन्धकर्त्ता भी परिचारक होता है।[33] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जयकृष्ण के वशंज या तो किसी शासक के अधीन भृत्य या नौकर के रूप में कार्य करते थे अथवा किसी देवमन्दिर की परिचर्या से सम्बद्ध कार्य करते थे। परन्तु विश्वास के साथ इनके विषय में कुछ भी कह सकने में हम असमर्थ है। आख्यान की दृष्टि से ध्रुवचरित में वर्णित ध्रुव की कथा 'विष्णुपुराण' के एकादश एवं द्वादश अध्याय में प्राप्त ध्रुवोपाख्यानम् से किञ्चित् भिन्नता रखते हुए भी श्लोकों के भावार्थ की दृष्टि से अनेकत्र साम्य रखती है। 93 श्लोकों में बसन्ततीलिका (1-41, 87-91, 93) स्वागता (42-62, 68-86) प्रतिमाक्षरा (63-67) शार्दूलविक्रीडित (93) छन्दों का प्रयोग किया गया है। छन्द परिवर्तन में किसी क्रम का अनुपालन नहीं किया गया है। भाषा अत्यन्त सरल और प्रसाद गुण युक्त शैली से समन्वित है। क्लिष्टता का सर्वथा अभाव है। सहज, सरस भाषान्वित यह चरित-काव्य निःसन्देह विद्वानों द्वारा ध्यातव्य कृति है। अद्यावधि इस काव्य के कहीं से प्रकाशित होने की सूचना नहीं प्राप्त हुई है। प्रयास के पश्चात् भी 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ कलकत्ता' में उपलब्ध

इस हस्तलेख की प्रति नहीं प्राप्त होने के कारण प्रस्तुत संस्करण के सम्पादन कार्य में प्रयाग स्थित गठानाथ झा परिसर के हस्तलेखागार से प्राप्त हस्तलेख का ही प्रयोग किया गया है। हस्तलेख की अन्य प्रति प्राप्त होने पर पाठभेद और अनुवाद के साथ शीघ्र ही इसका अग्रिम संस्करण प्रकाशित किया जा सकेगा।

टिप्पणी एवं सन्दर्भ (Endnotes)

1 चरित काव्य की परम्परा और रामचरितमानस, डॉ. दीनानाथ शुक्ल, प्रथम अध्याय, पृ.- 1

2 चरितकाव्य की परम्परा और रामचरितमानस, पृ.- 22

3 कथा इमास्ते कथिता महीयसां, विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञान वैराग्य त्रिवक्षया विमो, वचो विभूतीर्नतु परमार्थ्यम्।। - भागवत 12/3/14

4 हिन्दी-साहित्य का वृहत् इतिहास (प्र. भाग)- हिन्दी साहित्य की पीठिका, सम्पादक- डॉ. राजबली पाण्डेय, पृ.- 211

5 हिन्दी-महाकाव्य का स्वरूप विकास- डॉ. शम्भूनाथ सिंह, पृ.- 161

6 संस्कृत साहित्य का इतिहास- बलदेव उपाध्याय, पृ.- 240-41 .

7 ऋग्वेद 1/64/11

8 ऋग्वेद 3/54/7, 1/22/14

9 'ध्रुवसदत्वा नृषदं मनः सदम्
'बाज.सं. 9/2, श.ब्रा. 5/1/2/4

10 वैदिक कोश- ii , चन्द्रशेखर उपाध्याय एवं अनिल कुमार उपाध्याय, नाग प्रकाशक, दिल्ली, पृ.- 754

11 आश्वलायन गृह्यसूत्र 1/7/22
, शाङ्खायन गृह्यसूत्र 1/17/2
, लाट्यायन श्रौत सूत्र 3/3/6 इत्यादि

12 वैदिक इण्डेक्स, मैकडोनेल और कीथ, रामकुमार राय (अनुवादक) विद्याभवन चौखम्बा वाराणसी- 1962

13 वैदिक-पदानुक्रम-कोश, मूल- मौरिस ब्लूमफिल्ड, अनुवाद- सुनील कुमार उपाध्याय, परिमल पब्लिकेशन्स- दिल्ली, पृ.- 797-799

14 पुराण-समीक्षा, डॉ. हरिनारायण दुबे, आई.आई.डी.आर. इलाहाबाद (प्रकाशक) प्रथम संस्करण, पृ.- 48

15 हरिवंशपुराण 1/2/10

16 हरिवंशपुराण 1/2/12

17 पुराणों में इतिहास, लेखक डॉ. कुंवर व्यास, पृ.- 211

18 ब्रह्मपुराण, अध्याय- द्वितीय, श्लोक- 9, 10, 11

19 ब्रह्मपुराण, अध्याय- चौबीस, श्लोक- 1-6

20 The legend of Dhruva is narrated in the Bhagavata, Padma (Swarga Khanda), Agni and Naradiya, much to the same purport, and partly in the same words, as our text. The Brahma and its double the Hari Vamsa, the matsya and vayu merely allude to Dhruva's having been transferred by Brahma to the skies, in reward of his austerities. The story of his religious penance, and adoration of Visnu, seems to be an embellishment interpotated by the Vaisnava Puranas. Dhruva being adopted as a saint by their sect. The allusi on of surta in our text concurs with the form of the story as it appears else where, to indicate the priority of the more simple legend. -VISNU PUR, A- Edited by K.L. Joshi, परिमल पब्लिकेशन- दिल्ली- 2002, पृ.- 80

21 The Matsya, Brahma and Vayu Puranays speak of but one wife of Uttanapada and call her Sunnita : they say also that she had four sons. Apaspati (or vasu). Ayushmanta, Kirttimant and Dhruva. The Bhagavata, Padma and Naradiya have the same account as that of the text. - Vishnu Purana : A System of Hindu Mythology and tradition by H.H.Wilson, Page- 73.

22 New Catalogus catalogurum Vol.- 9, Dr. K. Kunjunni Raja, University of Madras- 1977, P.- 307.

23 Government Oriental MSS. Library Madras, Vol.- VI, Part- I, 1935 में भी पृ.- 7305-7306 पर अज्ञात लेखक के इस ध्रुवचरित काव्य का उल्लेख प्राप्त होता है।

24 Catalogue of MSS in the Maharaja of Jaipur Museum, Page- 64, Aditor- G.N. Bahura.

25 आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, सम्पादक- जगन्नाथ पाठक, पृ.- 139

26 संस्कृत वाङ्मय कोश- द्वितीय खण्ड, पृ.- 150, संपादक- श्रीधर भास्कर वर्णेकर।

27 Notices of Sanskrit Manuscripts- Vol.- II, Raja Rajendralala Mitra and M.M. Haraprasada Sastri, Sharede Prakashan, Delhi- 110052, 1990, Page- 274-75.

28 New- Catalogus Catalogorum, P.- 169.

29 Notices of Sanskrit Manuscripts, P.- 212, 213, 274, 275, 319.

30 "At the end of the work there is a short hymn to Krishna." - N.O.S.M., P.- 275.

31 • जयकृष्ण Paricaraka Family ; Son of Balkkrana, New Catalogus Catalogorum, P.- 169.

32 (i) श्रीमत्परिचारकसत्कुलप्रसूतजयकृष्णकृतमजामिलोपाख्यानं सतां मुदे भूयात्।

(ii) श्रीमत्परिचारकसत्कुलप्रसूतजयकृष्णरचिता श्रीमद्भगवद्वामनचित्रचरित्ररचना सतां मुदे भूयात्।

(iii) श्रीमद्भगवत्परिचारकसत्कुलप्रसूतजयकृष्णविरचिता श्रीमद्भगवत्प्रसादसमासादितध्रुवपदध्रुवचरित-रचना सदा सतां मुदे भूयात्।

33 The Encyclopaedia India, Edited by- Nagendranath Vasu, Vol.- 13, P.- 39.

अपराजिता मिश्रा
सम्पादिका



जयकृष्णप्रणीतं

ध्रुवचरितम्

ध्रुवचरितम्

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री शाकम्भर्यै नमः ॥

भर्त्रे श्रियः प्रवरपद्मभुवोऽपि पित्रे
तस्मै नमो भगवते भवभीतिहन्त्रे।
येनामरेन्द्रपदतोऽपि पदेऽतिरम्ये-
सुस्थापितः स्वपदपद्मरतिर्ध्रुवोऽसौ॥1॥

स्वायम्भुवाभिधमनोस्तनयः किलासी-
दुत्तानपाद इति तस्य सुतः सुनीत्याम्।
श्रीमान् ध्रुवः प्रथितकीर्तिरजायतान्यो
नाम्नोत्तमोऽतिनिपुणो रुचिरः सुरुच्याम्॥2॥

राजा यदासनगतः सुतमुत्तमं त-
मङ्के निधाय मुदमाप तदान्तिकस्थम्।
बालं ध्रुवं शिशुतयासनमारुरुक्षुं
नादातुमैच्छदवशः क्षणमीक्षितुं वा॥3॥

अत्रान्तरे सुरुचिराह सुतं सपत्न्याः
रे मूढ! धिष्ण्यमिदमुत्तममुत्तमस्य।
तद् गच्छ साधु तपसा तमनाथबन्धु-
माराधयाप्नुहि ममोदरभीष्टसिध्यै॥4॥

तद्वाक्यतीव्रतर-सायकविद्धचित्तः
तप्तः स्मरन् हरिमगात्स गृहं स्वमातुः।
माता तमात्मजमुदश्रुमवेक्ष्य दोर्भ्या-
मादाय सान्त्वयितुमित्थमुवाच धैर्यात्॥5॥

केनावरेण वद सत्वरममानितोऽसि
केनाथ वातिकठिनेन विगर्हितोऽसि।
किं वा कयातिशठया बत वञ्चितोऽसि
चण्ड्या कया कथय तात निवारितोऽसि॥6॥

खेलञ्चिरं सहचरैः क्षुधितोऽसि नूनं
श्रान्तोऽथवा किमु पिपासुतयार्दितोऽसि।
किं तेऽथवाभिमतमस्ति तदद्य सम्यक्
दुःसाध्यमप्यधिपमेत्य सुसाधयामि॥7॥

श्रुत्वा स्वमातृवचनानि स सन्नकण्ठ-
मुत्कण्ठितो भगवतीत्थमुवाच बालः।
मातर्न मामभिभवत्यतिदुःसहा क्षु-
द्वैक्लव्यदा च न पराऽतिपिपासुताऽपि॥8॥

मातुर्दुरुत्तरशरेण हतस्य यन्मे
चेतो न वाञ्छति रमापतिमन्तरान्यत्।
तूर्णं वनं प्रति परन्तपसेऽधिगन्तु-
माज्ञां तदर्हति भवत्यधुनैव दातुम्॥9॥

खिन्ना सुनीतिरवदत्तनयं प्रतीत्थं
त्वं बालकः क्व गहनेऽसुकरं तपः क्व।
प्राणाधिक ध्रुव! भवानतिकोमलाङ्गस्–
तद्दुष्कराद्विरमतां व्यवसायतोऽस्मात्॥10॥

भूपात्मजः पुनरुवाच ममास्ति तावत्-
त्वत्तोऽजनिर्यदि जनन्यवधारयेत्थम्।
बालोऽप्यबालतपसा खलु साधयिष्ये
श्रीमद्रमेशपदपद्मरजःप्रसादम्॥11॥

तत्त्वं प्रसन्नहृदया भव देह्यनुज्ञां
प्रास्थानिकीं वितर मङ्गलवाचमाशु।
त्वं सर्वथा हरिपदाब्जरजःप्रसाद-
सम्पन्नमागतमवेहि मितैर्दिनैर्माम्॥12॥

श्रुत्त्वा ध्रुवस्य वचनं सुमतिः सुनीतिः
प्राह स्म तं प्रतिसविस्मयहर्षखेदा।
यद्यस्ति तात तवधीर्भगवत्पदाब्जे
तद् गच्छ साधय तया निजमीहितार्थम्॥13॥

इन्द्रादयः सुरगणाः सुतरां प्रसन्नास्
त्वां सर्वदासुतशिवे पथि पातु सर्वे।
भक्त्या परोऽपि परया परमत्र लभ्यः
श्रीशः करोतु सफलं तव वाञ्छितार्थम्॥14॥

मात्रा कथञ्चिदतिधीरतया विसृष्टो-
हृष्टः स्मरन् हरिमरण्यमगात्स एकः।
क्रूरैर्वृते वनचरैर्गहनेऽपि तत्र
गच्छन् हरिस्मृतिबलान्न बिभेति च स्म॥15॥

तत्रागतेन सहसा किल नारदेन
देवर्षिणा स ददृशे प्रणतः पुरस्तात्।
पश्चादपारकरुणारससंभृतेन
धृत्वा करेण मधुराक्षरमेवमुक्तः॥16॥

जाने शिशो! परवशेन सुदुर्भगेन
पित्रा स नान्तिकगतः समुपेक्षितोऽसि।
मात्रा तया कठिनवाग्भिरुदस्य धर्म-
मुद्वेजितोऽस्यथ वनं समुपागतोऽसि॥17॥

गच्छामि राजभवनं वनमाशु हित्वा
साकं त्वयाऽहमपि तत्प्रविभज्य राज्यम्।
द्वेधा परं स्मृतिबलादनपेत धर्मं
गन्तास्मि सम्यगभिषिच्य भवन्तमस्मिन्॥18॥

आकर्ण्य तन्मुनिवचः स बभाण बालः
स्वामिन्नहं हरिपदाब्जरजो विहाय।
मन्ये महेन्द्रपदमप्यवरं मुनीन्द्र
राज्यं पितुः किमु तदल्पतरं क्षयिष्णु॥19॥

बालस्य तस्य हरिपादपरायणस्य
निश्चित्य निश्चयमथाह मुनिः प्रहृष्टः।
धन्योऽसि भूपसुत यस्य शिशोरपीत्थं
भक्तिः परेऽप्रतिहता भगवत्यनन्ते॥20॥

तद्बाल याहि यमुनातटमुत्तमं तत्
तत्रासने स्थिरतरं प्रविधाय चित्तम्।
तं द्वादशाक्षरमनुप्रजपन् चर त्वं
तावत्तपांसि फलसिध्युदयो न यावत्॥21॥

यत्रादिमो विलसति प्रवरः श्रुतिभ्यस्
तारो नमो भगवते च ततश्चतुर्थी।
नाम्नोऽखिलान्तरगतस्य हरेर्विभाति
तं मन्त्रराजममलं जप भूपबाल॥22॥

प्राच्यां स रक्षतु चराचररक्षकस्त्वां
श्रीशः सभक्तजनकल्पतरुः प्रतीच्याम्।
पायादपाय्यभयहा दिशि दक्षिणस्यां
दुर्वृत्तवृत्तशमनो हरिरुत्तरस्याम्॥23॥

अव्यादधश्छिदनभव्यसुदुर्विभाव्यः
स श्रीश ऊर्ध्वमभितश्च महाभयेभ्यः।
देवः सदावतु स सर्वगतोऽखिलात्मा
प्रीतः शिवानि स दिशत्वशिवस्य हर्त्ता॥24॥

श्रीमद्रमारमणपादसरोजसेवा-
संसक्तभक्तजनवर्गवरो मुनीन्द्रः।
तस्मै ध्रुवाय शिशवेऽथवराशिषस्ताः
सम्यक् प्रयुज्य स जवस्त्रिदिवं जगाम॥25॥

बालः समेत्य विजनं यमुनातटं तत्
स्नात्वा जलेऽतिविमलेऽथ महापगायाः।
तत्रासने च महता नियमेन तिष्ठन्
ध्यायन् हरिं हृदि परं जपति स्म मन्त्रम्॥26॥

अश्नन्फलानि वनजान्यथ शीर्णपर्णा-
न्यम्भोऽथ केवलमथ प्रविहाय तच्च।
वायुं ततस्तमवरुद्ध्य परे निधाय
चेतो महस्यतितरामचलो बभूव॥27॥

बालस्य तस्य तपसा प्रबलेन नित्यं
संक्षुब्धमाशु भुवनत्रितयं तदासीत्।
तेजोभिरस्य यदिहाग्निरपि प्रभग्न-
तेजो बहिर्नहि खलु ज्वलति स्म नान्तः॥28॥

तस्यातिदुःसहतपोभिरतीव तप्तः
सोऽयं तथा न तपनस्तपति स्म तावत्।
वातोऽपि तत्कृतनिरोधवशादतीव
भीतः परं विहरति स्म च मन्दमन्दम्॥29॥

किं चापरातिमहती महसस्तदीयाद्
भीता निजां कठिनतां विजहौ महीयम्।
स्तब्धं पतिं प्रति जवादभिगच्छतीनां
भीत्या पयांसि सरितां स्थिरतामवापुः॥30॥

त्रस्तैस्ततः सुरवरैरतिमूढधीभिः
प्रत्यूह कृत्यविधये प्रहिताः समन्तात्।
शार्दूलसिंहवनकुञ्जरपन्नगाद्याः
भीतास्तदीयमहसो विमुखा बभूवुः॥31॥

इन्द्रादयः सुरगणैः सह लोकपालाः
बालस्य तस्य बलवत्तपसोऽति भीताः।
लोकान् विलोक्य सकलानतिपीडितांस्तान्
क्षीराम्बुधिं ययुरजं पुरतो विधाय॥32॥

ते तत्र शेषशयनेस्थितमम्बुजाक्षं
पीताम्बरं सुवदनं नवनीरदाभम्।
शान्तं सुदर्शनगदाम्बुजशङ्खहस्तं
नारायणं ददर्शुरिन्दिरया समेतम्॥33॥

ब्रह्मादयः प्रतिपदं प्रणताः सुरास्तं
भव्यैः स्तवैर्बहुविधैरथ संप्रसाद्य।
बालस्य तस्य तपसा जनितं नितान्तं
लोकत्रयस्य तदशर्म शशंसुरित्थम्॥34॥

स श्रीहरिः सरसिजोद्भवशक्रमुख्या-
स्तानागतान् शरणमाशु सुसान्त्वयित्वा।
कर्त्तुं पुनः समदिशन्महतोऽधिकारान्
गन्तुं ध्रुवं प्रति तदैव मनोऽदधच्च॥35॥

वाहं हरिः समधिरुह्य विहङ्गराजं
तत्रागमच्चरति यत्र तपः स बालः।
ज्योतिर्मयं कलयतोऽस्य निजं स्वरूपं
तत्स्वप्नतोऽपि सहसैव तिरोऽभवच्च॥36॥

अन्तर्धृतं कथमपि प्रियमादिदेवं
जीवातुमन्तरितमेत्य परं विषण्णः।
सम्यक् धिया पुनरुपैतुमपारयंस्तं
बालो बहिर्मृगयितुं दृशमुत्ससर्ज॥37॥

तावत्परं स्वपुरतः स्थितमभ्रनीलं
श्रीवत्सकौस्तुभधरं गरुडाधिरूढम्।
शान्तं प्रसन्नवदनं पुरुषं पुराणं
नारायणं प्रियतमं स ददर्श बालः॥38॥

दृष्ट्वैव तं हृदिचिरं धृतमीशमादा-
वानन्दबाष्पपरिपूरितनेत्र आसीत्।
भूमौ स दण्डवदथ प्रणिपत्य तूर्ण-
हर्षादभूच्च पुलकाङ्कितसर्वगात्रः॥39॥

वाहान्निजात्समवतीर्य पदप्रपन्नमु-
त्थाप्य तं नतिपरं परिरभ्य दोर्भ्याम्।
श्रीमान् हरिः स करुणारससंभृतः सन्
पस्पर्श संन्नतममुं करपङ्कजेन॥40॥

श्रीमद्रमारमणकोमलपाणिपद्म-
स्पर्शादपारसुखसागरमग्न एव।
प्रेम्णा पुनः पुनरथो भगवत्पदाब्जे
पश्यन्नमन्निदमुवाच स सन्नकण्ठः॥41॥

यद्रमेश विधिरप्यवरस्त्वाम्-
अप्रमेयमजमव्ययमाद्यम्।
चेतसा कलयितुं विफलोऽभूत्
स्तोतुमीश कुशलः क इहास्ति॥42॥

तत्परात्पर तव स्तुतिमार्गं
गन्तुमुद्यमभृतोल्पतरायाः।
मद्गिरो नहि परिश्रम एकः
किन्त्विहास्ति सुमहानुपहासः॥43॥

त्वद्गुणामृतरसस्पृहयैतत्
चञ्चलं मम मनस्तदपीत्थम्।
तां गिरं नुदति साहसिनीं तत्-
क्षन्तुमर्हसि तयोरपराधम्॥44॥

भो रमारमण नीरदवर्ण
त्वं जयाजकरुणारसपूर्ण।
सन्नतिप्रवण पद्मभवादि
प्रेक्षणीय चरणाम्बुज पाहि॥45॥

यद्विधीन्द्रमुखनिर्जरसेव्यं
यन्मुनीन्द्रहृदयस्थमलभ्यम्।
श्रीश सम्प्रति नमामि तदेतत्
श्रीमदङ्घ्रिसरसीरुहयुग्मम्॥46॥

नाथ यः परतरः परतस्त्वं
मायया स्ववशयावश विश्वम्।
संसृजस्यवसि संहरसीत्थं
तं प्रतिक्षणमहं प्रणतोऽस्मि॥47॥

यच्चिरन्तनमुनीन्द्र चयोऽन्त-
श्चारुसच्चरणयुग्ममचिन्त्यम्।
चिन्तयन् विचरतीह चिरन्त-
च्चेतसा दधदहं प्रणमामि॥48॥

सन्नमद्विधिमुखामरवृंदं
प्रोल्लसन्मुकुटरत्नमयूखैः।
रञ्जितं यदभवत्तदहं ते
श्रीहरे पदयुगं प्रणमामि॥49॥

मायिनोऽपि भवतः प्रतिपन्नाः
पादमूलमचिरात्खलु मायाम्।
सन्तरन्त्यथ परं कलयन्तस्
त्वत्स्वरूपमिति किं कथनीयाः॥50॥

वास्तवं तदजरूपमजानन्
यत्तवामितगुणं सगुणं तत्।
यो भजत्यजितजातु विवेकी
सोऽपि किं न तरतीह भवाब्धिम्॥51॥

यः सदा स्तुतिपरैः सनकाद्यै-
रात्मलाभसुखमप्यवमत्य।
संश्रितोऽसि पदसंन्निधिसम्प-
त्प्राप्तये तमहमाश्रय ईशम्॥52॥

निस्पृहोऽपि भगवन् भवभीतिं
भङ्क्तुमेव भुवि भक्तजनानाम्।
भक्तवत्सलशुभानवतारान्
त्वं बिभर्ष्यपहरन्नशुभानि॥53॥

तद्दिनं सुदिनमेव समस्तं
यत्र ते क्षणमपि स्मृतिरीश।
दुर्दिनं सुदिनमप्यखिलं तद्
यत्र विस्मृतिरहो भवदीया॥54॥

चेतसा स्मरति येन कृतीत्वा-
मान्तरं करणमाहुरतस्तत्।
ध्यायतीह विषयान् बत येन
प्राहुरन्तकरणं करणं तत्॥55॥

येन पश्यति भवत्पदपद्मे
श्री हरे! नयनमुन्नयनं तत्।
येन चाहरति रूपविशेषान्
संसृतिं जनयदानयनं तत्॥56॥

या भवद्गुणकथासुधारसान्
सर्वदावहति सा सरस्वती।
मुक्तिदा जगति कीर्त्तिता बुधैः
केवलं मलहराऽपगापरा॥57॥

सा श्रुतिर्वरद संसृतिहन्त्री
त्वद्गुणश्रुतिपरा सततं या।
त्वद्गुणश्रुतिषु या विमुखी सा
सन्मुखी भवति संसृतिदाने॥58॥

तच्छिरः श्रुतिशिरोऽभिहितं तत्
सत्पदं नयति नीरजनेत्र।
सर्वदा वसति यद्भगवंस्त्वत्-
पादपङ्कजलसन्मणिपीठे॥59॥

आकरः स हि करः सुकृतानां
यो भवत्पदसमर्चनसक्तः।
किङ्करः स निकरः शमलानां
यः परस्वहरणाय नियुक्तः॥60॥

धन्य एव जनकः स मदीयः
सा सपत्नजननी त्वति धन्या।
यत्प्रसादत इदं पदपद्मम्
यन्मयापि समदर्शि दुरापम् ॥61॥

इत्युदीर्य विरतं तमुदश्रुं
प्रेमसागरनिमग्नमवेक्ष्य।
श्रीहरिः सकरुणः प्रियमित्थं
सप्रसादमधुराक्षरमाह॥62॥

अयि बाल दुष्करतपोभिरहं
परितोषितोऽस्मि भवता नितराम्।
तदबालचित्रचरिताद्य बहून्
मनसेप्सितान् वरय तात वरान्॥63॥

परिपीय सच्छ्रुतिपुटोपगतं
वचनामृतं भगवतोऽनुपमम्।
प्रणयेन तत्पदसमाहितदृक्
गिरमाददे नृपशिशुः सनयम्॥64॥

भगवन् भवत्पदसरोजधियः
किमिहामितैरपि वरैरवरैः।
वरदोऽसि तर्हि पदपद्मपतद्-
रजसः पदं वितर मह्यमिदम्॥65॥

स निशम्य तन्निजजनस्य वचः
पुनराह विस्मयवशः सदयम्।
अयि साधु तेऽभिलषितं तदपि
शृणु मद्वचः श्रुतिवचः प्रमितम्॥66॥

त्वमितोऽवरासनमुपेत्य पितुः
सकलं प्रशाधि जगतीवलयम्।
तदनु प्रयाहि सुरसिद्धगणैः
परितो वृतं ध्रुवपदं ध्रुव तत्॥67॥

संभ्रमागतसुरौघविसृष्टा
पुष्पवृष्टिरपतत् खलु तत्र।
यत्र भाति नृपसूनुसमेतः
स प्रसन्नवरदो हरिरुच्चैः॥68॥

आययुः सपदि तत्र मुनीन्द्रास्
ते तथा विधिमुखा विबुधेन्द्राः।
तं प्रणम्य कमलापति मारात्
तुष्टुवुः स्तुतिभिरप्रतिमाभिः॥69॥

आदिदेश स हरिः सुरसङ्घान्
तत्पितुः पुरममुं नयतेति।
पश्यतां पुरं त एव निजानां
सान्त्वयन् ध्रुवमथान्तर भूच्च॥70॥

नारदः स मुनिरेत्य समीपं
यच्छशंस चरितं तनयस्य।
तन्निशम्य नृपतिर्मुनिवर्यास्
त्वं महेन्द्र सदृशं ननु मेने॥71॥

निर्गते मुनिवरे स नृपस्तं
चिन्तयन् सपदि दूतमुखेभ्यः।
अश्रुणोत्सुरवरैः सह सूनुं
सद्विमानगतमागतमारात्॥72॥

भूपतिर्बहुधनानि च तेभ्यो
यच्छति स्म मुदितोऽनुपदं सः।
प्रत्यगात्स सचिवोऽथ सजायस्
तं पुरोपवनं सन्निधिसुस्थम्॥73॥

स ध्रुवः सुरगणाननुयाता-
नादिदेश भवनान्यधिगन्तुम्।
संभ्रमाकुलमुपागतमारात्
तं ददर्श पितरं मनुजेशम्॥74॥

स प्रणम्य पितरं परितोषात्
तां सपत्नजननीं प्रणनाम।
यन्ममापि भगवत्पदलाभः
स प्रसाद इह वामिति चाह॥75॥

भूपतिः सपरिरभ्य निजाङ्के
सन्निधाय मुदितस्तमुवाच।
अप्यसौ वसुमती सुतधन्या
यत्त्वया तदहमस्मि किमत्र॥76॥

भूपतिः करिवरे ध्रुवमेकं
सन्निवेश्य रथमाप्य?
तूर्यघोषसहिता चतुरङ्गा
वाहिनी तदनु सा चलति स्म॥77॥

तं नृपः स्वपुरतोऽथ विधाय
स्वां पुरीमुभयतः कलयन् सन्।
सङ्कुलं द्विजवरैर्वनिताभि-
र्मगलं स्वभवनं प्रविवेश॥78॥

तत्र भूपतिरसौ द्विजवर्यै-
रासने तमभिषिच्य ततोऽदात्।
पूजयन् सन्निधि संसदि तेभ्यो
भूषणानि वसनानि धनानि॥79॥

आशिषां सपदि तत्र शतैस्तै-
रेधितोऽथ पितरं प्रणिपत्य।
आययावनुगतः सचिवौघै-
र्मातुरेव सदनं स सुनीतेः॥80॥

तां प्रमोदभरनिर्भरगात्रीं
दूरतः समवलोक्य जवेन।
पादयोः परिपतन् स तदासीत्
सन्नकण्ठगलदश्रुरभीक्ष्णम्॥81॥

सा सुतं सपदि तं परिरभ्य
स्वाङ्क एव विनिवेश्य करेण।
कोमलान्यतिकृशानि तदङ्गा
न्यामृशत्समवदच्च तदेत्थम्॥82॥

स्पर्शनेन भगवत्पदपद्म-
स्पर्शनिर्वृत्ततरस्य तवैव।
निर्वृताद्य तदहं सुत मन्ये
स्वात्मलाभसुखमप्यपकृष्टम्॥83॥

भो ध्रुवामितगुणैरमलैस्तैः
शासतस्तव भुवो वलयं या।
कीर्तिरत्र भविता बुधगेया
सा च यातु भुवनत्रितयान्तम्॥84॥

यस्तवानुचरितं सुतचित्रं
कीर्त्तयिष्यति कृती सुकृती सः।
संहरन्नशुभजालमशेषं
प्राप्नुयादिह परत्र सुखानि॥85॥

इत्थमेत्य स सती वचनं तत्
प्राह तां जननि सर्वमिहैतत्।
आशिषासुलभमेव न चित्रं
चित्रमच्युतपदं सुलभं यत्॥86॥

इत्थं ध्रुवः स पितृभक्तिपरः पितुस्तत्
सिंहासनं समधिगत्य तदाज्ञयैव।
मात्रोर्द्वयं सममपश्यदथानुजं तं
नाम्नोत्तमं समतनोदतनुप्रतिष्ठम्॥87॥

श्रीशप्रसादबलतः प्रबलानजेयान्
जित्वान्तरानपि रिपूनजितः प्रजास्ताः।
संपालयन् द्विजवरान् परितर्पयंस्तद्
भूमण्डलं सकलमप्यवति स्म बालः॥88॥

यज्ञैर्यजन् बहुविधैर्हरिमेकमेव
शृण्वन् तदीयचरितानि तमर्चयंश्च।
तत्पादपद्मयुगलं हृदि चिन्तयंश्च
सानन्दमाशु स निनाय दिनानि तानि॥89॥

राज्यं पितुश्चिरतरं तदशेषभोग-
मित्थं ध्रुवो हरिजनैः सह साधु भुक्त्वा।
श्रीमद्रमेशपदपङ्कजरेणुजुष्ट
मिष्टं ध्रुवं पदमवाप दुरापमन्यैः॥९०॥

अद्यापि ते मुनिवराः खलु कश्यपाद्याः
सर्वे ग्रहा रविशशिप्रमुखाश्च सर्वाः।
ताराश्च ताः सुरगणा अपि शक्रमुख्या-
स्तं सर्वदा परिचरन्ति ससिद्धसङ्घाः॥९१॥

नोऽजानन् स्मृतिमेकिकां श्रुतिमथ स्वप्नेप्यऽजानन् शिशु-
र्मात्रा धिक्कृत एव यः परमवज्ञातश्च पित्रा ततः।
स्वीयं पादसरोजमाशुशरणं प्राप्तः स एव ध्रुवस्
स्तस्मिन् येन निवेशितो ध्रुवपदेपायात्स नारायणः॥९२॥

श्रीकृष्णपादपरिचारकबालकृष्ण-
बालेन या विरचिता जयकृष्णनाम्ना।
सेऽयं ध्रुवानुचरितेन विचित्रपद्या
भूयान्मुदे विरचना सुधियामजस्त्रम्॥९३॥

श्री मद्भगवत्परिचारकसत्कुलप्रसूतजयकृष्णविरचिता
श्रीमद्भगवत्पदप्रसादसमासादितध्रुवपदध्रुवचरितरचना सदा सतां मुदे भूयात्॥
॥श्री कृष्णार्पणमस्तु॥श्रीः॥श्रीः॥श्रीः॥

□□

श्लोकानुक्रमणी

